



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्म समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-5.375

Vol.-3; issue-4 (Oct.-Dec.) 2026

Page No- 01-13

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

1. Chinmay Kumar Sharma

Department of Geography,
Banasthali Vidyapith.

2. Dr. Ashutosh Department of
Geography, Banasthali Vidyapith.

प्रकृति, संस्कृति और सततता : जलवायु के भावी परिदृश्य में भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा का अध्ययन

परिचय : जलवायु परिवर्तन इक्कीसवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय और विकासात्मक चुनौतियों में से एक के रूप में उभरा है। यह पारिस्थितिक तंत्रों, आजीविकाओं, खाद्य सुरक्षा, जल संसाधनों और मानव समुदायों की सहनशीलता को प्रभावित कर रहा है। यद्यपि समकालीन जलवायु शासन में प्रौद्योगिकीय नवाचार, कार्बन प्रबंधन, पारिस्थितिक तंत्र की पुनर्बहाली और अनुकूलन योजना पर बल बढ़ा है, फिर भी यह मान्यता बढ़ रही है कि पर्यावरणीय परिवर्तन की प्रतिक्रियाएँ केवल आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेपों पर निर्भर नहीं रह सकतीं। विविध समाजों में समुदायों ने अपने स्थानीय पर्यावरण के साथ दीर्घकालिक अंतःक्रिया के माध्यम से ऐसी ज्ञान प्रणालियाँ विकसित की हैं, जिनसे वे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करने, जलवायु की परिवर्तनशीलता का सामना करने, जैव विविधता का संरक्षण करने और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में सक्षम हुए हैं। ऐसा ज्ञान उन क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहाँ समुदाय भूमि, जल, वनों और कृषि पारिस्थितिक तंत्रों से निकटता से जुड़े रहते हैं। इस संदर्भ में, भारत की लंबी और विविध बौद्धिक तथा सांस्कृतिक परंपराएँ पारिस्थितिक ज्ञान का एक महत्वपूर्ण भंडार प्रस्तुत करती हैं, जो सततता और जलवायु अनुकूलन पर समकालीन चर्चाओं में योगदान दे सकता है।

भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा दार्शनिक परंपराओं, सांस्कृतिक प्रथाओं, सामुदायिक संस्थाओं, कृषि प्रणालियों और भूदृश्य प्रबंधन की प्रथाओं की एक विस्तृत शृंखला में समाई हुई है। प्रकृति को केवल दोहन योग्य संसाधनों का संग्रह मानने के बजाय, अनेक भारतीय दार्शनिक परंपराएँ मनुष्य और व्यापक प्राकृतिक जगत के बीच अंतर्निर्भरता, संयम, उत्तरदायित्व और सामंजस्य के संबंधों पर बल देती हैं। ऋत (ऋत, ब्रह्मांडीय व्यवस्था), अहिंसा (अपकार न करना) और अपरिग्रह (भौतिक संचय में संयम या अधिकार भाव का त्याग) जैसी अवधारणाओं की व्याख्या पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और सतत जीवन को समझने के लिए एक नैतिक ढाँचे के रूप में की गई है (पाल, 2026)। इस दृष्टि से पर्यावरणीय क्षरण केवल ग्रीनहाउस गैसों के

Corresponding Author :

Chinmay Kumar Sharma

Department of Geography,
Banasthali Vidyapith.

अत्यधिक उत्सर्जन या संसाधनों की कमी से जुड़ी तकनीकी समस्या नहीं है। इसे अस्थिर उपभोग प्रतिमानों, कमज़ोर पड़ चुके पारिस्थितिक संबंधों और मानवीय आवश्यकताओं तथा पर्यावरणीय सीमाओं के बीच संतुलन के ह्रास के परिणाम के रूप में भी समझा जा सकता है। इस प्रकार ये दार्शनिक सिद्धांत वह वैचारिक आधार प्रदान करते हैं जिसके माध्यम से सततता, पारिस्थितिक उत्तरदायित्व, संयम और अंतर पीढ़ीगत समानता के समकालीन विचारों की परीक्षा की जा सकती है।

दार्शनिक चिंतन से परे, भारत का पारिस्थितिक ज्ञान विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में विकसित स्थान आधारित प्रथाओं की एक विविध श्रृंखला के रूप में व्यक्त होता है। पवित्र भूदृश्य और पवित्र उपवन (सेक्रेड ग्रोव) समुदाय आधारित संरक्षण का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। मालाबार तट पर पवित्र उपवन जलधारा तंत्रों के साथ स्थानिक संबद्धता में पाए गए हैं, जिससे वनस्पति संरक्षण के ऐसे स्थानीय क्षेत्र बनते हैं जो तटवर्ती (रिपेरियन) पारिस्थितिक तंत्रों से जुड़े कार्यों के समान पारिस्थितिक कार्य कर सकते हैं (भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025)। उनके निरंतर संरक्षण को ऐतिहासिक रूप से धार्मिक मान्यताओं, प्रथागत संस्थाओं और स्वदेशी पारिस्थितिक ज्ञान ने बल दिया है। ऐसे भूदृश्य दर्शाते हैं कि सांस्कृतिक मूल्य और पारिस्थितिक कार्य किस प्रकार परस्पर पुष्टि करने वाले बन सकते हैं, यद्यपि इन प्रथाओं से जुड़ी ज्ञान प्रणालियाँ और सामुदायिक संस्थाएँ असुरक्षित बनी हुई हैं और अनेक संदर्भों में औपचारिक संरक्षण ढाँचों के भीतर उन्हें पर्याप्त मान्यता नहीं मिली है (भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025)।

पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियाँ भारत की पारिस्थितिक विरासत का एक और महत्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करती हैं। विभिन्न पारिस्थितिक और जलवायविक क्षेत्रों के समुदायों ने ऐतिहासिक रूप से जल के संचयन, भंडारण, वितरण और संरक्षण के लिए स्थानीय रूप से अनुकूलित प्रणालियाँ विकसित की हैं। इन प्रणालियों को केवल तकनीकी संरचनाओं के रूप में नहीं समझा जा सकता। ये प्रायः एकीकृत सामाजिक पारिस्थितिक संस्थाएँ होती हैं, जिनमें अवसंरचना, प्रथागत नियम, सामुदायिक भागीदारी, मौसमी चक्र और अनुष्ठानिक प्रथाएँ परस्पर जुड़ी होती हैं। पंद्रह पारिस्थितिक क्षेत्रों के साक्ष्य बताते हैं कि पारंपरिक जल प्रणालियाँ स्थानीय रूप से अनुकूलित अवसंरचना के रूप में कार्य करती रही हैं, जबकि अनुष्ठानिक और सामुदायिक शासन तंत्रों ने उनके निरंतर रखरखाव और सामूहिक प्रबंधन में योगदान दिया है (फ़ातिमा और खरे, 2026)। बढ़ते जल संकट, बदलते वर्षा प्रतिरूपों, भूजल के अवक्षय और जलवायु जनित जलविज्ञानीय अनिश्चितता के समकालीन संदर्भ में इनका महत्व विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है।

स्वदेशी और समुदाय आधारित जलवायु ज्ञान भी जलवायु जोखिम की पहचान और अनुकूलन की स्थानीय प्रक्रियाओं में योगदान देता है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में जनजातीय समुदायों के स्वदेशी ज्ञान को चरम मौसमी घटनाओं के अवलोकन और शीघ्र पहचान तथा जलवायु संकटों के प्रति स्थानीय रूप से उपयुक्त प्रतिक्रियाओं से जोड़ा गया है (पारीक और त्रिवेदी, 2011)। ऐसा ज्ञान प्रायः वर्षा, तापमान, वनस्पति, पशु व्यवहार, मृदा दशाओं, जल उपलब्धता और मौसमी प्रतिरूपों में परिवर्तनों के दीर्घकालिक अवलोकन से उत्पन्न होता है। यद्यपि इन प्रणालियों को समकालीन जलवायु विज्ञान की मानकीकृत शब्दावली में हमेशा व्यक्त नहीं किया जाता, फिर भी वे संदर्भ विशिष्ट जानकारी दे सकती हैं जो सामुदायिक स्तर के अनुकूलन के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक है। उच्च जलवायविक संवेदनशीलता वाले और औपचारिक प्रौद्योगिकीय तथा संस्थागत संसाधनों तक सीमित पहुँच वाले क्षेत्रों में इनका महत्व विशेष रूप से अधिक है (पारीक और त्रिवेदी, 2011)।

कृषि प्रथाएँ एक अन्य प्रमुख क्षेत्र हैं जिनके माध्यम से भारत के पारिस्थितिक ज्ञान ने ऐतिहासिक रूप से सहनशीलता और संसाधन संरक्षण को सहारा दिया है। अनेक भारतीय कृषि पारिस्थितिक क्षेत्रों में फैली पारंपरिक मिश्रित फसल और पशुधन कृषि प्रणालियाँ विविधीकरण, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण, जोखिम न्यूनीकरण और स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों के कुशल उपयोग की रणनीतियों को दर्शाती हैं। फसलों और पशुधन का एकीकरण कृषि प्रणालियों के भीतर पोषक तत्वों के परिसंचरण में योगदान दे सकता है और बाहर से

मँगाई गई आदानों पर निर्भरता घटा सकता है। किंतु ऐसी प्रणालियों की दीर्घकालिक व्यवहार्यता केवल उनकी पारिस्थितिक विशेषताओं पर ही नहीं, बल्कि उनकी आर्थिक और संस्थागत परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। इसलिए स्थानीय खाद्य प्रणालियों से सामुदायिक स्तर के संबंधों को, जिनमें सहकारी विपणन, विद्यालयों के मध्याह्न भोजन की खरीद, स्थानीय बाज़ार और मूल्य श्रृंखला विकास शामिल हैं, पारंपरिक कृषि प्रथाओं की आर्थिक सततता को सुदृढ़ करने के संभावित तंत्रों के रूप में चिह्नित किया गया है (बिष्ट आदि, 2020)।

उन उदाहरणों को साथ रखकर देखें तो स्पष्ट होता है कि भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा कोई एकरूप या स्थिर ज्ञान भंडार नहीं है। यह दार्शनिक सिद्धांतों, प्रथागत संस्थाओं, पर्यावरणीय अवलोकनों, तकनीकी प्रथाओं, कृषि प्रणालियों और भूदृश्यों के साथ सांस्कृतिक संबंधों का एक विविध समुच्चय है। इसलिए समकालीन जलवायु विमर्श में इसकी प्रासंगिकता पारंपरिक प्रथाओं को उनके ऐतिहासिक या सांस्कृतिक मूल्य के लिए सुरक्षित रखने से आगे जाती है। ये ज्ञान प्रणालियाँ अनुकूलन, संसाधन संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण, जल प्रबंधन, कृषि सहनशीलता और सतत आजीविकाओं के लिए स्थानीय रूप से आधारित दृष्टिकोण प्रदान कर सकती हैं। साथ ही, उनकी संभावनाओं का रुमानीकरण नहीं किया जाना चाहिए, न ही उन्हें सर्वत्र लागू मान लिया जाना चाहिए। किसी पारंपरिक प्रथा की प्रभावशीलता प्रायः उसके पारिस्थितिक परिवेश, सामाजिक संस्थाओं, ज्ञान संचरण तंत्रों और बदलती सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

तथापि, मौजूदा साहित्य इस संभावना का आकलन करने के अनुभवजन्य आधार में महत्वपूर्ण सीमाएँ उजागर करता है। उपलब्ध शोध का बड़ा भाग गुणात्मक, वैचारिक, ऐतिहासिक या भौगोलिक रूप से स्थानीयकृत है। इस समीक्षा में विचारित दस स्रोतों में नियंत्रित परिणाम मापन का अभाव है, जो विशिष्ट जलवायु अनुकूलन या सततता परिणामों की प्राप्ति में पारंपरिक पारिस्थितिक प्रथाओं की तुलनात्मक प्रभावशीलता को व्यवस्थित रूप से प्रदर्शित कर सके। सबसे सुदृढ़ अनुभवजन्य साक्ष्य आमतौर पर विशिष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भों में अलग अलग प्रथाओं से संबंधित है, जबकि राष्ट्रीय या वैश्विक जलवायु शासन में भारतीय ज्ञान प्रणालियों की क्षमता के बारे में व्यापक दावे अधिकांशतः पाठ्य व्याख्या, दार्शनिक विश्लेषण या वैचारिक तर्कों से निकाले गए हैं (पाल, 2026; प्रतिहार और राँय, 2025; दवे और पटेल, 2026)। यह भेद महत्वपूर्ण है, क्योंकि किसी ज्ञान प्रणाली का सांस्कृतिक महत्व और जलवायु सहनशीलता में उसका अनुभवजन्य रूप से प्रदर्शित योगदान परस्पर संबंधित होते हुए भी विश्लेषणात्मक रूप से भिन्न प्रश्न हैं।

साहित्य से निरंतर उभरने वाली एक और चिंता पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान और उन संस्थाओं के क्रमिक क्षरण की है जिनके माध्यम से यह ज्ञान ऐतिहासिक रूप से संचरित होता रहा है। नगरीकरण, औद्योगीकरण, भूमि उपयोग के बदलते प्रतिरूपों, व्यावसायीकरण, पर्यावरणीय क्षरण और आजीविका प्रणालियों में परिवर्तनों ने समुदाय आधारित पर्यावरण प्रबंधन के कई रूपों को बाधित किया है। साथ ही, अंतर पीढ़ीगत संचरण के कमज़ोर पड़ने से पारिस्थितिक तंत्रों, कृषि प्रथाओं, जल प्रबंधन, जैव विविधता और जलवायु परिवर्तनशीलता से संबंधित स्थानीय रूप से विशिष्ट ज्ञान की हानि हुई है (दीक्षित, 2026; प्रतिहार और राँय, 2025; शर्मा और ढोटे, 2025)। अनेक मामलों में औपचारिक पर्यावरण और विकास नीतियों ने ऐसे ज्ञान को मान्यता देने, दस्तावेज़ बनाने, संचरित करने और सहारा देने के लिए पर्याप्त संस्थागत तंत्र अभी स्थापित नहीं किए हैं। फलस्वरूप, चुनौती केवल उन पारंपरिक प्रथाओं को पहचानने की नहीं है जो समकालीन सततता के लिए उपयोगी हो सकती हैं, बल्कि उन सामाजिक और संस्थागत परिस्थितियों को समझने की भी है जो उनकी निरंतर प्रासंगिकता के लिए आवश्यक हैं।

इसलिए यह साहित्य जलवायु शासन में एक व्यापक वैचारिक बदलाव की ओर संकेत करता है। यह बदलाव स्वदेशी और पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान को पूरक जानकारी के रूप में देखने से आगे बढ़कर उसे एक संभावित ज्ञान प्रणाली के रूप में पहचानने का है, जो पारंपरिक पर्यावरण प्रबंधन दृष्टिकोणों के साथ अंतःक्रिया कर सकती है, उनकी पूरक बन सकती है और कुछ संदर्भों में उन्हें चुनौती भी दे सकती है। अनेक विद्वानों का तर्क है

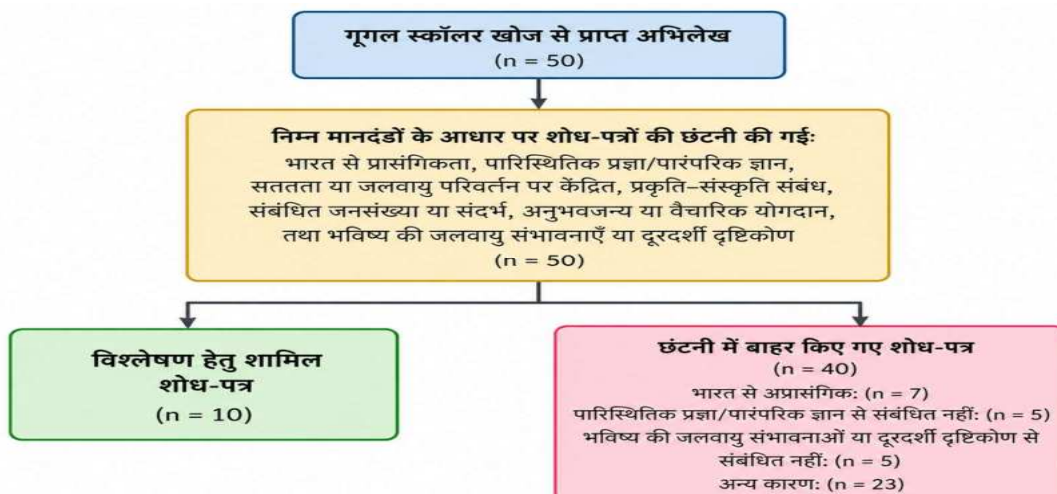
कि सार्थक एकीकरण के लिए अलग अलग ऐतिहासिक प्रथाओं के चयनात्मक या तकनीकी अधिग्रहण से अधिक की आवश्यकता है। इसके बजाय, वैज्ञानिक ज्ञान और समकालीन शासन तंत्रों के साथ साथ स्वदेशी और सामुदायिक ज्ञान को पर्यावरणीय संरक्षकता की एक महत्वपूर्ण नींव के रूप में संस्थागत मान्यता देना आवश्यक है (प्रतिहार और राँय, 2025; दवे और पटेल, 2026)। ऐसे दृष्टिकोण के लिए ज्ञान के स्वामित्व, सामुदायिक भागीदारी, सांस्कृतिक संदर्भ, अंतर पीढ़ीगत संचरण और ज्ञान धारक समुदायों के अधिकारों जैसे प्रश्नों पर भी ध्यान देना होगा।

इस पृष्ठभूमि में, भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा का परीक्षण जलवायु अनुकूलन और सतत विकास पर समकालीन बहसों के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। दार्शनिक नैतिकता, पवित्र भूदृश्य संरक्षण, पारंपरिक जल प्रबंधन, जैव विविधता उन्मुख कृषि और स्वदेशी जलवायु ज्ञान का अभिसरण यह संकेत देता है कि भारत की पर्यावरणीय विरासत में अनेक मार्ग निहित हैं जिनके माध्यम से पारिस्थितिक सहनशीलता को समझा और संभवतः सुदृढ़ किया जा सकता है। फिर भी, इस संभावना को साकार करने के लिए पारंपरिक ज्ञान के निर्बाध गुणगान के बजाय उपलब्ध साक्ष्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन आवश्यक है। इसलिए यह समीक्षा भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा और जलवायु अनुकूलन तथा सततता में उसकी प्रासंगिकता पर मौजूदा साहित्य का परीक्षण करती है, जिसमें अनुभवजन्य साक्ष्य, वैचारिक आधार, भौगोलिक और संस्थागत संदर्भ, सीमाओं तथा पारंपरिक और स्वदेशी ज्ञान को समकालीन पर्यावरण शासन में समाहित करने के अवसरों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

यद्यपि पारंपरिक पारिस्थितिक प्रथाएँ क्षेत्रीय सततता के लिए प्रलेखित लाभ प्रदान करती हैं, फिर भी मौजूदा पर्यावरण नीतियों में उन्हें बनाए रखने और बड़े पैमाने पर लागू करने के लिए संस्थागत तंत्रों का अभाव है। इन शोध अंतरालों को दूर करने के लिए यह शोधपत्र चार प्राथमिक उद्देश्यों को लेकर चलता है:

- **शोध उद्देश्य 1 (RO1):** आधुनिक जलवायु नैतिकता के लिए नैतिक ढाँचों के रूप में प्राचीन भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों (ऋत, अहिंसा, अपरिग्रह) का विश्लेषण करना।
- **शोध उद्देश्य 2 (RO2):** पारंपरिक जल प्रणालियों, पवित्र उपवनों और कृषि प्रथाओं की कार्यात्मक पारिस्थितिक भूमिकाओं और सामुदायिक शासन प्रतिमानों का मूल्यांकन करना।
- **शोध उद्देश्य 3 (RO3):** पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (TEK) के क्षरण के लिए उत्तरदायी प्रमुख शहरी, सामाजिक आर्थिक और नीतिगत कारकों की पहचान करना।
- **शोध उद्देश्य 4 (RO4):** स्वदेशी प्रज्ञा को औपचारिक पर्यावरण शासन और राष्ट्रीय जलवायु नीतियों में संस्थागत रूप देने के लिए कार्यान्वयन योग्य रणनीतियाँ प्रस्तावित करना।

आरेख :



शोधपत्रों की खोज : हमने Google Scholar का उपयोग करके शैक्षणिक शोधपत्रों में कीवर्ड आधारित खोज की, जो सहकर्मी समीक्षित पत्रिका लेखों, पुस्तकों, शोध प्रबंधों, प्रीप्रिंट और सम्मेलन कार्यवाहियों को अनुक्रमित करता है।

हमने संयुक्त कीवर्ड के साथ निम्नलिखित खोज क्वेरी चलाई:

“Nature” AND “Culture” AND “Sustainability” AND “India” AND “Ecological Wisdom” AND “Climate Futures”

Google Scholar से आरंभ में कुल 50 परिणाम प्राप्त हुए। कीवर्ड से प्रासंगिकता के आधार पर आरंभिक सार और शीर्षक की स्क्रीनिंग के लिए सभी 50 प्राप्त शोधपत्र लिए गए।

स्क्रीनिंग : हमने उन स्रोतों को उनके सारांश (एब्स्ट्रैक्ट) के आधार पर शामिल किया जो निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करते थे:

- भारत से प्रासंगिकता: क्या शोधपत्र भारत को भौगोलिक या सांस्कृतिक संदर्भ के रूप में केंद्र में रखता है या उसे पर्याप्त रूप से शामिल करता है?
- पारिस्थितिक प्रज्ञा या पारंपरिक ज्ञान: क्या शोधपत्र पारिस्थितिक प्रज्ञा, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (TEK), स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों, या प्रकृति और पर्यावरण से संबंधित सांस्कृतिक प्रथाओं से जुड़ा है?
- सततता या जलवायु केंद्रितता: क्या शोधपत्र सततता, जलवायु परिवर्तन, जलवायु अनुकूलन या पर्यावरण संरक्षण को केंद्रीय विषय के रूप में संबोधित करता है?
- प्रकृति और संस्कृति का संबंध: क्या शोधपत्र मानव समुदायों, संस्कृति या समाज और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंध की परीक्षा करता है?

जो शोधपत्र किसी भी एक मानदंड पर विफल रहे, उन्हें स्वतः बाहर कर दिया गया। अन्य सभी शोधपत्र, जिनमें किसी मानदंड पर “शायद” वाले शोधपत्र भी शामिल हैं, स्क्रीनिंग में शामिल रखे गए।

सारांश स्क्रीनिंग के चरण में प्रत्येक प्रमुख कारण से बाहर किए गए शोधपत्रों की संख्या इस प्रकार थी:

- भारत से प्रासंगिकता: $n = 7$
- पारिस्थितिक प्रज्ञा या पारंपरिक ज्ञान: $n = 5$
- जलवायु भविष्य या भविष्योन्मुखी परिप्रेक्ष्य: $n = 5$
- अन्य कारण: $n = 23$

परिणाम

शामिल अध्ययनों की विशेषताएँ : शामिल किए गए दस स्रोत 2011 से 2026 तक फैले हैं, जिनमें से नौ 2025 या 2026 में प्रकाशित हुए हैं। इनके दायरे, विधि और विषयगत बल में पर्याप्त भिन्नता है। ये मालाबार तट के पवित्र उपवनों पर स्थान आधारित अनुभवजन्य कार्य से लेकर प्राचीन भारतीय नैतिकता और जलवायु सहनशीलता पर व्यापक दार्शनिक निबंधों तक फैले हैं। पाँच अध्ययनों के पूर्ण पाठ समीक्षा के लिए उपलब्ध थे; पाँच का मूल्यांकन केवल सारांश से किया गया, जिससे उन स्रोतों से जानकारी निकालने की गहराई सीमित हो गई।

अध्ययन	पूर्ण पाठ प्राप्त हुआ	अध्ययन डिज़ाइन	विषयगत केंद्र
अंजना भाग्यनाथन और दीपक धायनिथी, 2025	नहीं	साहित्य समीक्षा, क्षेत्र सर्वेक्षण, प्रत्यक्ष अवलोकन और 392 पवित्र उपवनों का स्थानिक विश्लेषण	मालाबार तट पर पवित्र उपवनों का स्थानिक वितरण और तटवर्ती संरक्षण तथा जलवायु अनुकूलन में उनकी भूमिका

अध्ययन	पूर्ण पाठ प्राप्त हुआ	अध्ययन डिज़ाइन	विषयगत केंद्र
स्वाति पाल, 2026	हाँ	वैचारिक, वर्णनात्मक चर्चा	जलवायु नैतिकता और सहनशीलता के लिए वैचारिक संसाधन के रूप में प्राचीन भारतीय पारिस्थितिक दर्शन (ऋत, अहिंसा, अपरिग्रह, धर्म)
आकाश शर्मा और मीनाक्षी ढोटे, 2025	नहीं	प्राथमिक और द्वितीयक शोध का संयोजन, क्षेत्रवार विश्लेषण	भारत के छह कृषि जलवायु क्षेत्रों में सांस्कृतिक पारिस्थितिक तालमेल और पारंपरिक प्रथाएँ
ए. पारीक और पी. त्रिवेदी, 2011	नहीं	जनजातीय समुदायों की धारणाओं और प्रथाओं का प्रलेखन करने वाला केस अध्ययन	राजस्थान में जलवायु, मौसम और आपदा पूर्वानुमान तथा प्रतिक्रिया का स्वदेशी ज्ञान
आफ़रीन फ़ातिमा और ए. खरे, 2026	मूल में उल्लेख नहीं	साहित्य समीक्षा, पारिस्थितिक क्षेत्र निर्धारण, क्षेत्र प्रलेखन और विषयगत संश्लेषण को मिलाकर 15 पारिस्थितिक क्षेत्रों में किया गया दो चरणीय गुणात्मक अध्ययन	भारत में पारंपरिक जल प्रणालियों का सांस्कृतिक महत्व और सामाजिक जलविज्ञानीय सहनशीलता
आई. बिष्ट आदि, 2020	मूल में उल्लेख नहीं	चार कृषि पारिस्थितिकियों में फ़ोकस समूह चर्चाओं और संरचित प्रश्नावली का उपयोग करने वाला बहु स्थलीय, गैर यादृच्छिक अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण	लघु जोत कृषि की सततता और पारंपरिक कृषि को स्थानीय खाद्य प्रणालियों से जोड़ने वाले सामुदायिक स्तर के हस्तक्षेप
याशी गोयल, 2026	मूल में उल्लेख नहीं	प्राचीन कृषि ग्रंथों का विषयगत साहित्य समीक्षा और ऐतिहासिक विश्लेषण, जिसे समकालीन कृषि पारिस्थितिकी अध्ययनों से मिलाकर देखा गया	मृदा, जल, जैव विविधता और फसल प्रबंधन के संबंध में भारतीय ज्ञान प्रणालियों (IKS) में वैज्ञानिक और पारिस्थितिक प्रज्ञा
डी. प्रतिहार और अदिति रॉय, 2025	मूल में उल्लेख नहीं	पाठ्य विश्लेषण और नीति आलोचना	सांस्कृतिक रूप से अंतर्निहित सततता प्रतिमान की नींव के रूप में भारतीय दार्शनिक अवधारणाएँ (धर्म, ऋत) और भारतीय पर्यावरण नीति की आलोचना

अध्ययन	पूर्ण पाठ प्राप्त हुआ	अध्ययन डिज़ाइन	विषयगत केंद्र
डॉ. मेहुल पी. दवे और डॉ. दिपिका पटेल, 2026	मूल में उल्लेख नहीं	ऐतिहासिक ज्ञान प्रणालियों और उनकी नीतिगत प्रासंगिकता का संश्लेषण और विश्लेषण (डिज़ाइन औपचारिक रूप से निर्दिष्ट नहीं)	प्राचीन भारतीय जल अभियांत्रिकी, वनस्पति विज्ञान, विधिक ढाँचे और मृदा परीक्षण प्रथाएँ, जो SDG के अनुरूप रणनीतिक पारिस्थितिक संसाधन हैं
देवांशु दीक्षित, 2026	मूल में उल्लेख नहीं	पाठ्य विश्लेषण, द्वितीयक स्रोत समीक्षा, तुलनात्मक विश्लेषण और केस अध्ययन पद्धति अपनाने वाला गुणात्मक अध्ययन	पर्यावरणीय नैतिकता, जल प्रबंधन, जैव विविधता संरक्षण और कृषि को एकीकृत करने वाले समग्र सततता प्रतिमान के रूप में भारतीय ज्ञान परंपरा (IKT)

यह शोध समूह मुख्यतः गुणात्मक और वैचारिक है। दस में से किसी भी स्रोत ने प्रयोगात्मक या अर्ध प्रयोगात्मक डिज़ाइन नहीं अपनाया, और किसी ने औपचारिक प्राथमिक अंतिम बिंदु निर्धारित नहीं किए (गोयल, 2026; दवे और पटेल, 2026; पाल, 2026; पारीक और त्रिवेदी, 2011; प्रतिहार और रॉय, 2025; फ़ातिमा और खरे, 2026; बिष्ट आदि, 2020; भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025; शर्मा और डोटे, 2025)। केवल बिष्ट आदि (2020) कोई औपचारिक मात्रात्मक आँकड़े प्रस्तुत करते हैं, और वे भी एक अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण के वर्णनात्मक सार हैं, अनुमानात्मक सांख्यिकी नहीं। इसका व्यावहारिक निहितार्थ यह है कि पारंपरिक प्रथाओं की प्रभावशीलता के दावे मुख्यतः पाठ्य विश्लेषण, उदाहरण आधारित चित्रण और गुणात्मक क्षेत्र प्रलेखन पर टिके हैं, नियंत्रित मापन पर नहीं। इससे तय होता है कि समग्र साहित्य से किस प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

विषयगत विश्लेषण

विषय 1: पारिस्थितिक चिंतन की दार्शनिक और नैतिक नींव : कई स्रोत भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा को मुख्यतः उसकी दार्शनिक संरचना के माध्यम से देखते हैं। उनका तर्क है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में आधुनिक सततता विमर्श के उदय से बहुत पहले ही पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी विश्वदृष्टि समाहित थी। पाल (2026) इस विषय का सबसे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती हैं। वे ऋतु (ब्रह्मांडीय व्यवस्था), अहिंसा (अपकार न करना), अपरिग्रह (अधिकार भाव का त्याग), लोकसंग्रह (सबका कल्याण) और पृथ्वी धर्म (पृथ्वी की नैतिकता) के समूह को जलवायु सहनशीलता के लिए एक “नैतिक व्याकरण” के रूप में चिह्नित करती हैं। निर्णायक बात यह है कि पाल समकालीन जलवायु संकट को केवल कार्बन प्रबंधन की विफलता नहीं, बल्कि एक सभ्यतागत विच्छेद के रूप में प्रस्तुत करती हैं: पारिस्थितिक चेतना की वह हानि जिसकी जड़ें प्रकृति को एक पवित्र, अंतर्निर्भर सातत्य के बजाय निष्क्रिय संसाधन मानने की ओर हुए दार्शनिक बदलाव में हैं।

प्रतिहार और रॉय (2025) इसी दार्शनिक धारा को आगे बढ़ाते हैं। वे वेदों और उपनिषदों पर ध्यान केंद्रित करते हुए तर्क देते हैं कि धर्म और ऋतु नैतिक संयम तथा भावी पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व के मार्गदर्शक हैं, जो राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (NAPCC) जैसे समकालीन भारतीय पर्यावरण नीति उपकरणों से मेल भी खाते हैं और उनकी आलोचना भी कर सकते हैं। उनका केंद्रीय मत यह है कि विशुद्ध तकनीकी पर्यावरण शासन अपर्याप्त है और भारत में सततता के लिए ऐसे गहरे सांस्कृतिक बदलाव की आवश्यकता है जो दार्शनिक नैतिकता को जलवायु कार्रवाई के केंद्र में पुनः स्थापित करे। दवे और पटेल (2026) इस निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं। उनका तर्क है कि प्राचीन भारत के पारिस्थितिक संबंध एक साथ धार्मिक, नैतिक और विधिक ढाँचों में अंतर्निहित थे, जिससे दार्शनिक आयाम व्यावहारिक संसाधन प्रबंधन से अविभाज्य हो जाता है। गोयल (2026) भी

पारंपरिक कृषि ज्ञान को प्रकृति और ऋतु पर आधारित विश्वदृष्टि में स्थित करती हैं, और अनुभवजन्य पारिस्थितिक ज्ञान के पाठ्य स्रोतों के रूप में ऋग्वेद, कृषि पराशर और वृक्षायुर्वेद का सहारा लेती हैं।

इन स्रोतों में एक सुसंगत सूत्र उस चीज़ की आलोचना है जिसे पाल “औद्योगिक आधुनिकता की दोहनकारी विश्वदृष्टि” कहती हैं और अंतर्निर्भरता तथा संयम के सिद्धांतों से उसका विचलन। महत्वपूर्ण यह है कि इनमें से कोई भी लेखक ऐतिहासिक परिस्थितियों की ओर पूर्ण वापसी का समर्थन नहीं करता। इसके बजाय सभी प्राचीन नैतिक ढाँचों को आधुनिक वैज्ञानिक और नीतिगत उपकरणों के साथ एकीकृत करने का आह्वान करते हैं, और गोयल स्पष्ट रूप से संदर्भ आधारित आकलन के बिना ऐतिहासिक विधियों को अपनाने के विरुद्ध चेतावनी देती हैं।

विषय 2: पवित्र भूदृश्य और जैव विविधता संरक्षण : अपेक्षाकृत अधिक अनुभवजन्य रूप से आधारित स्रोतों का एक समूह यह जाँचता है कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रथाओं ने पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण भूदृश्यों को कैसे रचा और बनाए रखा है। भाग्यनाथन और धायनिथी (2025) सबसे सटीक स्थानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने मालाबार तट के 392 पवित्र उपवनों का अध्ययन किया और पाया कि सांस्कृतिक रूप से संरक्षित ये वन खंड जलधारा तंत्रों के निकट स्थित हैं, जो जलसंभर संरक्षण में तटवर्ती वनस्पति के कार्य के समान हैं। अध्ययन इस स्थानिक प्रतिरूप को स्थानीय आस्था प्रणालियों में निहित स्वदेशी पारिस्थितिक ज्ञान से सीधे जोड़ता है, जो चेतावनी देती हैं कि पवित्र उपवनों को छोड़ा न जाए, अन्यथा मीठे पानी के स्रोत सूख जाएंगे। लेखकों के अनुसार यह निषेध पुनर्भरण क्षेत्रों को कानूनी नहीं बल्कि सांस्कृतिक आदेश के अंतर्गत प्रभावी रूप से सुरक्षित रखता है। निर्णायक नीतिगत निष्कर्ष यह है कि इस संरक्षण तंत्र को वर्तमान में कानूनी समर्थन प्राप्त नहीं है, जिससे इनके पारिस्थितिक महत्व के बावजूद ये वन खंड विकास के दबावों के प्रति असुरक्षित हैं।

दीक्षित (2026) पवित्र उपवन संरक्षण के चित्र को केरल से आगे विस्तृत करते हैं। वे बताते हैं कि भारत भर में पवित्र उपवन जैव विविधता के हॉटस्पॉट के रूप में कार्य करते हैं, और इस ज्ञान परंपरा से जुड़ी पारंपरिक कृषि प्रथाओं ने मृदा उर्वरता में सुधार किया है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटाई है। वे यह भी नोट करते हैं कि जोहड़ (पारंपरिक बावड़ी और तालाब) के पुनरुद्धार ने प्रलेखित केस अध्ययनों में भूजल स्तर और मौसमी नदियों को प्रत्यक्ष रूप से पुनर्जीवित किया है। हालाँकि, वे पारंपरिक ज्ञान के घटते संचरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण और नीतिगत समर्थन के अभाव को इसके निरंतर उपयोग के प्रमुख खतरों के रूप में चिह्नित करते हैं।

दवे और पटेल (2026) इस विषय में ऐतिहासिक संस्थागत आयाम जोड़ते हैं। वे प्राचीन भारत में औपचारिक पर्यावरण संरक्षणों के अस्तित्व का पता लगाते हैं, जिनमें कौटिल्य द्वारा पर्यावरणीय क्षति पर स्तरीकृत दंड और अभयारण्यों (वन्यजीव अभयारण्यों) की स्थापना शामिल हैं, और इन्हें वे जैव विविधता शासन के आरंभिक संरचनात्मक प्रतिमानों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सब मिलाकर, ये स्रोत संकेत देते हैं कि पवित्र भूदृश्य संरक्षण न तो केवल प्रतीकात्मक है और न आकस्मिक, बल्कि एक व्यावहारिक, ऐतिहासिक रूप से प्रलेखित पारिस्थितिक तर्कसंगति को दर्शाता है।

विषय 3: पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियाँ : समीक्षित साहित्य में जल प्रबंधन भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा के सबसे ठोस रूप से प्रलेखित क्षेत्रों में से एक के रूप में उभरता है। फ़ातिमा और खरे (2026) सबसे व्यापक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। वे पंद्रह पारिस्थितिक क्षेत्रों में पारंपरिक जल प्रणालियों (TWS) की जाँच करते हैं और उन्हें ऐसे एकीकृत सामाजिक पारिस्थितिक अवसंरचना के रूप में वर्णित करते हैं जो एक साथ भूजल पुनर्भरण, बाढ़ शमन, मृदा स्थिरता और मौसमी जल नियमन का समर्थन करती हैं। एक प्रमुख निष्कर्ष यह है कि ये कार्य उन प्रणालियों में निहित शासन, अनुष्ठानिक प्रथा और सामूहिक संरक्षकता से अलग नहीं किए जा सकते। तेलंगाना का उदाहरण यह दर्शाने के लिए लिया गया है कि रखरखाव चक्रों से जुड़े अनुष्ठानिक कैलेंडर बिना बाहरी प्रशासनिक प्रवर्तन के अर्ध शुष्क परिस्थितियों में प्रणाली की निरंतरता को कैसे बल देते हैं। लेखक TWS को एक वितरित, भूदृश्य

आधारित सहनशीलता प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो प्रकृति आधारित तथा नीले हरे अवसंरचना दृष्टिकोणों से मेल खाता है, साथ ही इस बात पर जोर देते हैं कि जलवायविक अनिश्चितता की स्थितियों में इन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए इनकी पारिस्थितिक विशिष्टता और सांस्कृतिक अंतर्निहितता को मान्यता देना आवश्यक है।

दवे और पटेल (2026) ऐतिहासिक अभियांत्रिकी आयाम जोड़ते हैं। वे सिंधु घाटी की परिष्कृत जलीय अवसंरचना और शृंगवेरपुर की बाढ़ जल आसवन प्रणालियों का हवाला इस साक्ष्य के रूप में देते हैं कि प्राचीन जल प्रबंधन में तकनीकी परिष्कार और पारिस्थितिक उद्देश्य का मेल था। दीक्षित (2026) इस कार्यात्मक तर्क की पुष्टि करते हैं। वे बताते हैं कि जोहड़ पुनरुद्धार के अनुभवजन्य उदाहरण भूजल पुनर्बहाली के व्यावहारिक परिणाम दर्शाते हैं, और इन प्रणालियों को समकालीन जल संकट के सबसे व्यवहार्य और किफायती समाधानों में गिनते हैं। गोयल (2026) समुदाय द्वारा प्रबंधित जल संरक्षण को व्यापक भारतीय कृषि परंपरा में स्थित करती हैं और तालाब तथा जलसंभर प्रणालियों को खाद्य सुरक्षा और सहनशीलता की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

शर्मा और ढोटे (2025) एक अंतर क्षेत्रीय आयाम जोड़ते हैं। वे नोट करते हैं कि भारत के छह प्रमुख कृषि जलवायु क्षेत्रों में भिन्न जलवायु, मृदा प्रकारों और वनस्पति व्यवस्थाओं के अनुरूप जल प्रबंधन प्रथाओं में पर्याप्त अंतर है, और ये क्षेत्र विशिष्ट परंपराएँ उन अनुकूलनात्मक प्रथाओं में शामिल हैं जो आधुनिकीकरण के दबावों के अंतर्गत क्रमिक ह्रास का सामना कर रही हैं।

विषय 4: पारंपरिक कृषि, मृदा और जैव विविधता आधारित खेती : स्रोतों का एक बड़ा उपसमूह पारंपरिक भारतीय खेती की सततता संबंधी साख को संबोधित करता है, जिसमें उसकी पारिस्थितिक नींव और उसके सामने खड़े खतरों, दोनों पर ध्यान दिया गया है। गोयल (2026) सबसे अधिक पाठ आधारित विवरण देती हैं। वे वृक्षायुर्वेद और अन्य शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर मृदा प्रबंधन, फसल विविधता, मौसम पूर्वानुमान और जैव एकीकृत खेती के ऐतिहासिक दृष्टिकोणों का वर्णन करती हैं, और तर्क देती हैं कि ये एक जैव विविधता आधारित प्रतिमान बनाते हैं जो पर्यावरणीय परिणामों में औद्योगिक एकल फसल पद्धति से तीव्र रूप से भिन्न है। उनका केंद्रीय तर्क है कि भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ जलवायु, मृदा और जल संबंधी सतत विकास लक्ष्यों (SDG) की ओर कार्यान्वयन योग्य मार्ग प्रदान करती हैं, और उन्हें आधुनिक सूक्ष्मजीव विज्ञान तथा कृषि विज्ञान के साथ एकीकृत करना भूमि पुनर्बहाली के संकर दृष्टिकोणों का बेहतर मार्ग है।

बिष्ट आदि (2020) चर्चा को वर्तमान समय की लघु जोत वास्तविकताओं में आधारित करते हैं। चार कृषि पारिस्थितिक स्थलों में वे प्रलेखित करते हैं कि भारत में खेती अब भी मुख्यतः मिश्रित फसल और पशुधन आधारित तथा प्रायः निर्वाह उन्मुख है, जहाँ जैविक और जैव गतिशील प्रथाएँ अब भी प्रचलित हैं और खाद्य प्रणालियों में आध्यात्मिकता गहराई से समाई हुई है। उनके अन्वेषणात्मक कार्य ने पारंपरिक खेती को आर्थिक रूप से अधिक व्यवहार्य बनाने के संभावित मार्गों के रूप में चार सामुदायिक स्तर के हस्तक्षेप चिह्नित किए: जैविक उत्पादन को समुदाय समर्थित कृषि (CSA) से जोड़ना, लघु किसानों को विद्यालयों के मध्याह्न भोजन खरीद कार्यक्रमों से जोड़ना, स्थानीय मूल्य श्रृंखलाएँ विकसित करना, और कृषि पर अत्यधिक निर्भरता घटाने के लिए ग्रामीण युवाओं हेतु कृषि से इतर रोजगार सृजित करना। अध्ययन किए गए प्रत्येक कृषि पारिस्थितिकी में किसान सहकारी समितियाँ सबसे पसंदीदा CSA व्यवस्था रहीं, और स्थानीय स्तर पर विद्यालयों को भोजन आपूर्ति करने की इच्छा निरंतर उच्च रही। ये निष्कर्ष अन्वेषणात्मक और कार्य कारण संबंध रहित हैं, किंतु ये संकेत देते हैं कि माँग पक्ष के संस्थागत संबंध पारंपरिक मिश्रित कृषि प्रणालियों के आर्थिक अस्तित्व को सहारा दे सकते हैं।

विषय 5: जलवायु और आपदा जोखिम का स्वदेशी ज्ञान : एक स्रोत विशेष रूप से स्वदेशी ज्ञान और आपदा जोखिम प्रबंधन के अंतरापृष्ठ पर केंद्रित है, न कि दीर्घकालिक कृषि या दार्शनिक सततता पर। पारीक और

त्रिवेदी (2011) प्रलेखित करते हैं कि राजस्थान के जनजातीय समुदाय, जिनमें भील, मीणा, बंजारा, काठोड़ी, रबारी, सांसी और कंजर समूह शामिल हैं, बादलों के बनने, बिजली, हवा की दिशा, वर्षा और सूखे की व्याख्या करने के लिए स्वदेशी ज्ञान और पारंपरिक कथाओं का उपयोग करते हैं। वे इन व्याख्याओं का उपयोग चरम घटनाओं की शीघ्र पहचान के लिए और सामना करने तथा शमन की प्रतिक्रियाओं का मार्गदर्शन करने के लिए करते हैं। अध्ययन ऐसे क्षेत्र में स्थित है जो उच्च जलवायु संवेदनशीलता, उच्च भेद्यता और निम्न अनुकूलन क्षमता से चिह्नित है, जिससे समुदायों की स्वदेशी ज्ञान पर निर्भरता विशेष रूप से परिणामकारी बन जाती है। जैव विविधता पर चरम घटनाओं के अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रभावों के बारे में सामुदायिक धारणाएँ भी प्रलेखित की गई हैं, जो दर्शाती हैं कि स्वदेशी ज्ञान में ऐसे पारिस्थितिक निगरानी कार्य भी शामिल हैं जो तात्कालिक आपदा प्रतिक्रिया से आगे जाते हैं।

यह अध्ययन समूह में सबसे पुराना (2011) है और पद्धति की दृष्टि से अन्य से भिन्न है, क्योंकि यह दार्शनिक या नीति उन्मुख समीक्षा के बजाय एक सामुदायिक केस अध्ययन है। यह साहित्य में स्वदेशी पारिस्थितिक ज्ञान के तीव्र जलवायु जोखिमों पर वास्तविक समय में लागू होने का एकमात्र प्रलेखित उदाहरण प्रदान करता है, और इसीलिए मुख्यतः वैचारिक या ऐतिहासिक साहित्य को जीवंत अनुकूलनात्मक प्रथा से जोड़ने में अद्वितीय है।

विषय 6: नीति एकीकरण, शासन और मुख्यधारा में लाने की चुनौती : सभी स्रोतों में भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा के मान्य मूल्य और उसे बनाए रखने या बड़े पैमाने पर लागू करने में सक्षम संस्थागत ढाँचों के अभाव के बीच एक संरचनात्मक तनाव दिखाई देता है। इस तनाव को अलग अलग स्तर की विशिष्टता के साथ संबोधित किया गया है। भाग्यनाथन और धायनिथी (2025) इसे सबसे ठोस रूप में चिह्नित करते हैं: पवित्र उपवनों को उनके प्रदर्शित पारिस्थितिक कार्य के बावजूद वर्तमान में कानूनी संरक्षण दर्जा प्राप्त नहीं है, जिससे आस्था समुदाय के पालन के अभाव में वे नष्ट होने के प्रति असुरक्षित हैं। दीक्षित (2026) इसी संरचनात्मक अंतराल को अधिक व्यापक रूप में चिह्नित करते हैं। वे पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों के ह्रास, तीव्र नगरीकरण और औद्योगीकरण, तथा स्वदेशी ज्ञान और औपचारिक वैज्ञानिक प्रणालियों के बीच की खाई को भारतीय पारिस्थितिक परंपरा के व्यापक अनुप्रयोग में प्रमुख बाधाओं के रूप में बताते हैं।

प्रतिहार और रॉय (2025) नीति से सबसे प्रत्यक्ष रूप में जुड़ते हैं। वे विश्लेषण करते हैं कि धर्म और ऋतु की अवधारणाएँ NAPCC और नवीकरणीय ऊर्जा पहलों सहित मौजूदा भारतीय पर्यावरण नीति उपकरणों से कैसे मेल खाती हैं और उनकी आलोचना कैसे करती हैं। उनका तर्क है कि सच्ची सततता केवल नीतिगत तंत्रों से प्राप्त नहीं हो सकती और उसके लिए ऐसे सांस्कृतिक बदलाव की आवश्यकता है जो ज्ञानात्मक बहुलवाद को संस्थागत रूप दे, अर्थात् स्वदेशी ज्ञान धारकों को पूरक जानकारी के भंडार के बजाय पर्यावरण शासन में समान भागीदार माने। दवे और पटेल (2026) इसी निष्कर्ष को विकसित भारत के राष्ट्रीय दृष्टिकोण के भीतर रखते हैं। वे भारतीय ज्ञान प्रणालियों को पारिस्थितिक रूप से सुरक्षित विकास के लिए एक रणनीतिक सभ्यतागत संसाधन के रूप में स्थापित करते हैं और ऐसे समुदाय संचालित संरक्षकता प्रतिमानों की वकालत करते हैं जो पारंपरिक प्रज्ञा को आधुनिक नीति के साथ समन्वित करें। शर्मा और ढोटे (2025) पारंपरिक ज्ञान और पारिस्थितिक प्रथा की रक्षा के विशिष्ट तंत्रों के रूप में लक्षित नीतिगत हस्तक्षेपों, समुदाय आधारित प्रलेखन और सहभागी संरक्षण प्रयासों का आह्वान करते हैं।

संश्लेषण : साहित्य एक सुसंगत समग्र तर्क प्रस्तुत करता है: भारत के पास विविध, स्थान विशिष्ट और दार्शनिक रूप से आधारित पारिस्थितिक ज्ञान प्रणालियाँ हैं जो समकालीन जलवायु अनुकूलन के लिए प्रासंगिक हैं। किंतु यह तर्क काफ़ी भिन्न स्वरूप के स्रोतों के माध्यम से प्रस्तुत होता है, और इससे कुछ तनाव उत्पन्न होते हैं जिन पर सावधानी से ध्यान देना आवश्यक है।

विषमता का सबसे महत्वपूर्ण अक्ष उन स्रोतों के बीच है जो भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा को मुख्यतः दार्शनिक और नैतिक संसाधन मानते हैं (पाल, 2026; प्रतिहार और रॉय, 2025) और उन स्रोतों के बीच जो उसे ठोस, अनुभवजन्य रूप से सत्यापन योग्य प्रथाओं का समुच्चय मानते हैं (पारीक और त्रिवेदी, 2011; फ़ातिमा और खरे, 2026; बिष्ट आदि, 2020; भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025; दीक्षित, 2026)। ये परस्पर विरोधी अवस्थितियाँ नहीं हैं, क्योंकि दोनों समूह पारंपरिक ज्ञान की व्यावहारिक प्रासंगिकता की पुष्टि करते हैं, किंतु इनसे साक्ष्य के भिन्न मानक और नीतिगत प्रवेश बिंदु निहित होते हैं। दार्शनिक स्रोत अपना पक्ष वैचारिक तर्क और पाठ्य विश्लेषण पर टिकाते हैं (पाल, 2026; प्रतिहार और रॉय, 2025), जबकि व्यवहार उन्मुख स्रोत क्षेत्र प्रलेखन, स्थानिक विश्लेषण और एक मामले में अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण आँकड़ों पर आधारित हैं (फ़ातिमा और खरे, 2026; बिष्ट आदि, 2020; भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025)। इन दोनों समूहों में पारिस्थितिक लाभ के दावों को साथ पढ़ने पर पाठक को ध्यान देना चाहिए कि सबसे विशिष्ट और अनुभवजन्य रूप से आधारित साक्ष्य अपेक्षाकृत संकीर्ण क्षेत्रों से संबंधित है: पवित्र उपवनों की जल तंत्रों से निकटता (भाग्यनाथन और धायनिथी, 2025), जोड़ड़ पुनरुद्धार और भूजल पुनर्बहाली (दीक्षित, 2026), और तेलंगाना में जल प्रणाली की निरंतरता के साथ अनुष्ठानिक रखरखाव कैलेंडरों का मेल (फ़ातिमा और खरे, 2026)। भारतीय ज्ञान प्रणालियों की जलवायु सहनशीलता के लिए परिवर्तनकारी क्षमता के व्यापक दावे मुख्यतः वैचारिक तर्क और ऐतिहासिक संश्लेषण से समर्थित हैं, मापे गए परिणामों से नहीं।

विषमता का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू पैमाने और सामान्यीकरण से संबंधित है। भाग्यनाथन और धायनिथी (2025) के निष्कर्ष भौगोलिक रूप से सटीक हैं: मालाबार तट के 392 पवित्र उपवन। पारीक और त्रिवेदी (2011) राजस्थान के उच्च भेद्यता वाले संदर्भ में विशिष्ट जनजातीय समुदायों का प्रलेखन करते हैं। फ़ातिमा और खरे (2026) पंद्रह पारिस्थितिक क्षेत्रों का व्यवस्थित विश्लेषण करते हैं, किंतु उन सभी में एक समान परिणामों का दावा नहीं करते, और उनका तेलंगाना उदाहरण प्रतिनिधि के बजाय दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत है। इसके विपरीत, वैचारिक और IKS संश्लेषण वाले शोधपत्र (गोयल, 2026; दवे और पटेल, 2026; दीक्षित, 2026; पाल, 2026; प्रतिहार और रॉय, 2025) राष्ट्रीय या सभ्यतागत पैमाने पर दावे करते हैं, और उस पारिस्थितिक तथा सांस्कृतिक विविधता पर व्यवस्थित रूप से ध्यान नहीं देते जिसे अनुभवजन्य अध्ययन उजागर करते हैं। शर्मा और ढोटे (2025) इस प्रवृत्ति का आंशिक सुधार प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि वे पारंपरिक प्रथा और पुनरुद्धार क्षमता, दोनों में क्षेत्रीय असमानताओं का स्पष्ट प्रलेखन करते हैं, फिर भी उनका विश्लेषण भी प्राथमिक पारिस्थितिक मापन के बजाय द्वितीयक स्रोतों पर टिका है।

तीसरा तनाव ह्रास और खतरे के प्रति दृष्टिकोण से संबंधित है। अनुभवजन्य और अनुप्रयुक्त स्रोत पारंपरिक ज्ञान के क्षरण और उसे सहारा देने वाली परिस्थितियों के प्रति उल्लेखनीय रूप से अधिक सजग हैं। दीक्षित (2026) ज्ञान संचरण में गिरावट, नगरीकरण और नीतिगत अंतरालों को अनुप्रयोग की बाधाओं के रूप में चिह्नित करते हैं; शर्मा और ढोटे (2025) पारंपरिक प्रथाओं के क्रमिक ह्रास का प्रलेखन करते हैं, जिसमें सहनशीलता में क्षेत्रीय भिन्नता है; बिष्ट आदि (2020) ग्रामीण युवाओं के पलायन और वैश्वीकृत खाद्य प्रणालियों को मिश्रित कृषि भूदृश्यों के लिए संरचनात्मक खतरों के रूप में वर्णित करते हैं। अधिक दार्शनिक झुकाव वाले स्रोत प्राचीन प्रज्ञा को पुनः प्राप्त किए जा सकने वाले संसाधन के रूप में देखते हैं और उसके निरंतर संचरण की समाजशास्त्रीय परिस्थितियों से नहीं जूझते, जो वैचारिक साहित्य में एक सार्थक कमी है।

इन विषमताओं के आर-पार जो निष्कर्ष यथोचित विश्वास के साथ निकाला जा सकता है वह यह है कि विशिष्ट पारंपरिक प्रथाओं के प्रलेखित पारिस्थितिक कार्य हैं जो स्थान विशिष्ट और सांस्कृतिक रूप से अंतर्निहित हैं, और उनके सामाजिक सांस्कृतिक आधारों को संस्थागत मान्यता दिए बिना ऊपर से नीचे की नीति द्वारा उन्हें सीधे बड़े पैमाने पर लागू नहीं किया जा सकता। ये प्रथाएँ हैं: तटवर्ती क्षेत्रों में पवित्र उपवन संरक्षण, सांस्कृतिक रूप से पुष्ट रखरखाव चक्रों वाली समुदाय शासित जल प्रणालियाँ, पारंपरिक मिश्रित फसल और पशुधन कृषि,

तथा स्वदेशी जलवायु अवलोकन ज्ञान। यह व्यापक दावा कि ऋतु, अहिंसा और धर्म जैसे दार्शनिक सिद्धांत जलवायु सहनशीलता के लिए एक “नैतिक व्याकरण” प्रदान करते हैं, बौद्धिक रूप से सुसंगत है और वैश्विक जलवायु नैतिकता में भारत के योगदान को रूपायित करने के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। फिर भी, यहाँ समीक्षित साहित्य में यह अनुभवजन्य आधार से रहित एक तर्कमूलक दावा ही बना रहता है। इस क्षेत्र की सबसे उत्पादक दिशा भारत की पारिस्थितिक प्रज्ञा के साथ दार्शनिक और व्यावहारिक जुड़ाव के बीच चुनाव करना नहीं है, बल्कि विशिष्ट कृषि पारिस्थितिक और शासन संदर्भों में विशिष्ट पारंपरिक प्रथाओं का कठोर अनुभवजन्य मूल्यांकन करना है, जिसकी शुरुआत भाग्यनाथन और धायनिथी, फ़ातिमा और खरे, तथा बिष्ट आदि ने की है। साथ ही प्रतिहार और रॉय तथा पाल की इस अंतर्दृष्टि को गंभीरता से लेना चाहिए कि जो नीतिगत ढाँचे सांस्कृतिक और नैतिक आधारों से नहीं जुड़ते, उनके नाजुक बने रहने की संभावना है (पाल, 2026; प्रतिहार और रॉय, 2025)।

संदर्भ :

1. गोयल, वाई. (2026). धरती का पोषण: भारतीय ज्ञान प्रणालियों (IKS) के परिप्रेक्ष्य से सतत कृषि और पारिस्थितिक प्रज्ञा [Nurturing the Earth: Sustainable agriculture and ecological wisdom through the lens of Indian Knowledge Systems (IKS)]. *The Research Dialogue*. <https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i1.50>
2. दीक्षित, डी. (2026). सतत पर्यावरणीय विकास के लिए भारतीय प्राचीन तकनीकें: भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अध्ययन [Indian ancient techniques for sustainable environmental growth: A study of Indian knowledge tradition]. *International Journal for Research in Applied Science and Engineering Technology*. <https://doi.org/10.22214/ijraset.2026.80150>
3. दवे, एम. पी., और पटेल, डी. (2026). “सभ्यतागत सततता और शैक्षिक सुधार: विकसित भारत की यात्रा में प्राचीन भारतीय जल और मृदा संरक्षण” [Civilizational sustainability and educational reform: Ancient Indian water and soil conservation in the journey toward Viksit Bharat]. *Vidhyayana*. <https://doi.org/10.58213/npf5pp75>
4. पारीक, ए., और त्रिवेदी, पी. (2011). राजस्थान, भारत में जलवायु परिवर्तन और आपदा पूर्वानुमान के सांस्कृतिक मूल्य और स्वदेशी ज्ञान [Cultural values and indigenous knowledge of climate change and disaster prediction in Rajasthan, India].
5. पाल, एस. (2026). प्राचीन भारतीय पारिस्थितिकी और आधुनिक जलवायु संकट: तपती दुनिया के लिए विस्मृत प्रज्ञा [Ancient Indian ecology and the modern climate crisis: Forgotten wisdom for a warming world]. *International Journal of Latest Technology in Engineering Management & Applied Science*. <https://doi.org/10.51583/ijltemas.2026.150100028>
6. प्रतिहार, डी., और रॉय, ए. (2025). पारिस्थितिक प्रज्ञा और सतत विकास के भारतीय दार्शनिक मार्ग [Indian philosophical pathways to eco wisdom and sustainable development]. *International Journal of Social Science Research*. <https://doi.org/10.70558/ijssr.2025.v2.i4.30541>
7. फ़ातिमा, ए., और खरे, ए. (2026). भारत में पारंपरिक जल प्रणालियों के सांस्कृतिक महत्व का अन्वेषण [Exploring the cultural significance of the traditional water systems in India]. *Blue-Green Systems*. <https://doi.org/10.2166/bgs.2025.032>

8. बिष्ट, आई., राणा, जे., और अहलावत, एस. पी. (2020). भारत में लघु जोत कृषि का भविष्य: सततता संबंधी कुछ विचार [The future of smallholder farming in India: Some sustainability considerations]. *Sustainability*. <https://doi.org/10.3390/su12093751>
9. भाग्यनाथन, ए., और धायनिथी, डी. (2025). पवित्र उपवन और तटवर्ती संरक्षण: भारत के मालाबार तट पर स्थानीय जलवायु अनुकूलन की ओर प्रकृति आधारित समाधान [Sacred groves and riparian conservation: Nature-based solutions towards local climate adaptation in the Malabar Coast of India]. *Landscape Research*. <https://doi.org/10.1080/01426397.2025.2452439>
10. शर्मा, ए., और ढोटे, एम. (2025). सांस्कृतिक पारिस्थितिक तालमेल: भारत के कृषि जलवायु क्षेत्रों में पारंपरिक प्रथाएँ और जैवभौतिकीय प्रणालियाँ [Cultural-ecological synergies: Traditional practices and biophysical systems in India's agro-climatic regions]. *International Journal of Science and Research Archive*. <https://doi.org/10.30574/ijrsra.2025.15.1.0947>

•